इकाई 4 गीतिकाव्य के रूप में विद्यापति पदावली

इकाई की रूपरेखा

4.० उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 गीतिकाव्य और विद्यापति
4.3 गीतिकाव्य के रूप में विद्यापति पदावली की विशेषताएँ
4.4 विद्यापति पदावली में भक्ति और शृंगार का द्वन्द्व
4.5 विद्यापति पदावली की भाषा
4.6 परवर्ती काव्यधारा में विद्यापति का प्रभाव
4.7 सारांश
4.8 अभ्यास/प्रश्न

4.1 उद्देश्य

पिछली इकाई (इकाई संख्या-3)में आप 'विद्यापति और उनका युग' का अध्ययन कर चुके हैं। इस इकाई में हम **विद्यापति पदावली** की प्रमुख विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़कर आप :

- गीतिकाव्य के रूप में **विद्यापति पदावली** की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे,
- **विद्यापति पदावली** की भाषा पर विचार कर सकेंगे,
- परवर्ती काव्यधारा पर **विद्यापति** के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे

4.1 प्रस्तावना

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं "लीला के पद कब लिखे जाने लगे - यह भी कुछ निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता, किन्तु दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी में मात्रिक छन्दों में श्रीकृष्णलीला के गाने की प्रथा चल पड़ी थी, इसमें कोई सन्देह नहीं। जयदेव का **गीतगोविन्द** इसी प्रकार के मात्रिक छन्दों के पद में लिखा गया था। .....जयदेव के बाद उसी प्रकार की पदावली बंगाल के चण्डीदास और मिथिला के विद्यापति नामक कवियों ने लिखी।.....जिस प्रकार के पद बंगाल और उड़ीसा में प्रचलित थे उसी प्रकार के पद सुदूर पश्चिम में भी प्रचलित थे। अर्थात पूर्व से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत में ऐसे पद व्याप्त थे।" (हिंदी साहित्य का आदिकाल, पंचम व्याख्यान, पृ0 109) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह मत आपके सामने रखने का मकसद यह है कि आप यह जान लें कि विद्यापति जिस समय **पदावली** की रचना कर रहे थे उस समय उसका अखिल भारतीय स्वरूप मौजूद था। हिंदी में और खासकर मैथिली में विद्यापति गीतिकाव्य परंपरा के प्रणेता के रूप में उभरते हैं।

लीलागान की यह परंपरा लोक मानस में मौजूद थी। इसीलिए इनमें जनमानस और जन भावना की सरल, सहज और अविरल अभिव्यक्ति हुई है। विद्यापति की पदावली में प्रेम भी है और भक्ति भी, शृंगार भी है और आध्यात्मिकता भी।

पदावली के कारण ही विद्यापति मैथिल कोकिल कहलाए। उन्होंने जन भाषा मैथिली में काव्य रचना की। विद्यापति जन कवि थे। उनके जन सरोकार, जनचेतना, भावनात्मक उत्कर्ष तथा अनुभूति की सूक्ष्मता का परिचय उनकी **पदावली** ही देती है।

पदावली श्रेष्ठ गीतिकाव्य है। इनमें भावों की लयात्मक गति के साथ-साथ काव्य और संगीत का अनूठा सामंजस्य है। उनके असंख्य गीत लोककंठ में बस गए हैं। उनका यह काव्य लोकसंस्कृति से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। इसमें जन-जीवन की सामान्य सच्चाई प्रस्फुटित हुई है।

बड़ा कवि अनुकरणीय होता है। उससे उसके युग के कवि प्रभावित होते हैं। विद्यापति से भी गोविन्द दास, हरिदास आदि मैथिली के कवि प्रभावित हुए। सूरदास के लीलापदों पर भी विद्यापति के गीतों का प्रभाव स्पष्ट है। यही नहीं निराला के गीतों पर भी विद्यापति की गीतात्मकता का प्रभाव देखा जा

सकता है। बंगाल का ''ब्रजबूलि'', असम का ''वरगीत'' तथा ''अंकियानाट'' पर विद्यापति के गीतों की स्पष्ट छाप है। यही नहीं नेपाल के कुछ कवि भी विद्यापति से प्रभावित हुए।

इस इकाई में हम इन्हीं बिन्दुओं पर विचार करेंगे।

4.2 गीतिकाव्य और विद्यापति

साहित्य और काव्य के अन्य उपभेदों की तरह ही गीतिकाव्य की भी कोई सर्वमान्य परिभाषा स्थिर करना कठिन है। पर कई आचार्यों ने जो अपने अपने अभिमत प्रकट किए हैं उस आधार पर गीतिकाव्य की जो कुछ विशेषताएँ तय होती हैं, वे हैं : 1. मुक्तक पद, 2. गेयता, 3. भावना की तीव्र अभिव्यक्ति तथा 4. घटना प्रवाह की त्वरा। अर्थात गीतवाद्यों के साथ गाया जाने वाला छन्दबद्ध काव्य गीतिकाव्य होगा। लेकिन यह भी ध्यान में रखना है कि एक श्रेष्ठ कलाकार इतिहास ग्रंथ के पाठ को भी वाद्य यंत्र के साथ गा देंगे, वह गीतिकाव्य नहीं होगा, उसमें भावनात्मक अनुभूति का चित्रण भी होना चाहिए। और वह भी इकहरी अनुभूति या स्थिति का चित्रण। अर्थात ऐसी भावनात्मक अनुभूति जिसमें संक्षिप्तता और मानवीय भावनाओं के रंग और गति हों। संक्षिप्तता इसका बड़ा ही आवश्यक बंध है। गीति-वाद्य के साथ गाया जाने वाला महाकाव्य, गीतिकाव्य नहीं कहलाएगा। इन दो शर्तों के साथ त्वरा अर्थात शीघ्रता भी बहुत आवश्यक है। घटना प्रवाह की त्वरा। शीघ्रता बहुत अच्छी चीज नहीं है। पर अत्यंत संक्षिप्त भावना की अभिव्यक्ति होने के कारण गीतिकाव्य के लिए त्वरा बहुत आवश्यक शर्त हो जाती है। हीगेल ने गीतिकाव्य की दो आवश्यक शर्तें बताई हैं। उनके अनुसार गीतिकाव्य के पूरे छन्द में सम्बद्धता अनिवार्य है। अर्थात भावाकुलता और प्रभाव की समान स्थिति का अटूट निर्वाह होना चाहिए। इसके बिना प्रभावान्विति क्षरित होती है। इनकी दूसरी शर्त है, कथन और घटना-प्रवाह में त्वरित परिवर्तन की स्थिति। अर्थात नई बात कहकर उसे तुरंत पूर्वकथित हिस्से से जोड़ देना और इससे रसोद्रेक उत्पन्न कर प्रभाव को उत्कर्ष देना, एक सफल गीतिकार का कौशल ही है।

गीतिकाव्य की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए डॉ० शिवप्रसाद सिंह लिखते हैं, *''काव्य की अन्य विधाओं की तरह गीति काव्य चूँकि सचेत बुद्धि व्यापार से उत्पन्न वस्तु नहीं है, इसलिए आदिम मानव के अति पुरातन और आरम्भिक भावों के साथ ही गीतिकाव्य का जन्म हुआ। हालांकि यह कहना कठिन है कि गीतिकाव्य के आविर्भाव का निश्चित काल क्या है, किन्तु इतना तो सहज अनुमेय है कि संवेगों की तीव्रता और उद्वेलन की सामान्य परिस्थितियों में भावाकुल अभिव्यक्ति ने स्वरों का रूप लिया - ऐसे शब्द और अर्थ तथा उनकी पुनरावृत्ति - यही गीति काव्य है।''* (विद्यापति, पृ०191)

वैदिक काल से पूर्व की कोई प्रामाणिक जानकारी न होने की स्थिति में हम मान सकते हैं कि भारतीय गीतिकाव्य का आरंभ वैदिक युग से हुआ। वैदिक गीतियों में गीतकाव्य का स्वर मुखरित हुआ है। वैदिक ऋचाओं, भक्तिपरक स्तुतियों, समूहश्रम के समय श्रम की कठोरता की उपेक्षा और उसे भुलाने के निमित्त गाए जाने वाले समूह गीतों, वीर गाथाओं , प्रेमाख्यानों से होते हुए गीति यहाँ तक आ पहुँची कि मानव मन की अत्यंत कोमल भावना, एकान्त क्षण का मानसिक उद्वेग, मनुष्य की हार्दिक विह्वलता - सबके सब यहाँ व्यक्त होने लगे। हिन्दी गीतिकाव्य के पहले रचनाकार विद्यापति हैं। विद्यापति पदावली लीलागान की परंपरा में पड़ती है। लीलागान की परंपरा लोकमानस में व्याप्त थी। इसका प्रमाण जयदेव का गीतगोविन्द है। बंगाल, उड़ीसा, कश्मीर में श्रीकृष्ण लीला के गाने का प्रचलन था। हिंदी में सर्वप्रथम विद्यापति ने इस प्रकार के गीतों की रचना की। उनकी पदावली जयदेव के गीतगोविन्द से प्रभावित है।

विद्यापति ने गीतिकाव्य के रूप में पदावली की रचना मुक्तक शैली में सफलतापूर्वक की। इसमें आए भाव अपने आप में पूर्ण और स्वतंत्र हैं। गीतिकाव्य में भावनाओं की अभिव्यक्ति की प्रमुखता होती है। **विद्यापति पदावली** में राधाकृष्ण के व्यक्तिगत प्रेम का सूक्ष्म अंकन हुआ है। संगीतात्मकता और कोमल कांत पदावली के लिए तो विद्यापति की पदावली प्रसिद्ध है। उनकी कविता में काव्य और संगीत का अद्भुत मेल हुआ है। **विद्यापति पदावली** के गेय तत्व और काव्यत्व इस कदर एक दूसरे में घुलमिल गए हैं कि उन्हें एक-दूसरे से अलग करना मुश्किल प्रतीत होता है। भावों की तीव्र अभिव्यक्ति और संक्षिप्तता विद्यापति के गीतों की विशेषता है। ये सब तत्व मिलकर विद्यापति पदावली को एक श्रेष्ठ गीतिकाव्य बनाते हैं।

महाकवि विद्यापति के जन सरोकार, जनचेतना, भावनात्मक उत्कर्ष, अनुभूति की सूक्ष्मता का परिचय सही अर्थों में इनकी पदावली ही देती है जो लोकभाषा में लिखी गयी हैं। इनकी संस्कृत रचनाएँ तो इनके पाण्डित्य की द्योतक हैं। पदावली की रचनाएं मोटे तौर पर दो तरह की हैं - एक भक्तिपरक और

दूसरी प्रेमपरक। भक्तिपरक रचनाओं के आधार पर विद्वानों में इन्हें शैव, शाक्त, वैष्णव आदि तरह-तरह के सम्प्रदाय में बैठाने का मतभेद चलता रहा है। शृंगारिक रचनाओं में भी इनके फलक काफी विस्तृत हैं। इन सारी स्थितियों के साथ जो एक विशेषता सभी जगह उपस्थित है वह है इन रचनाओं की गीतिमयता। विद्वानों की बैठक से लेकर चूल्हे-चौके तक, गृहस्थों की मंडली से लेकर साधुओं के समुदाय तक, भक्तों-पुजारियों से लेकर प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय तक विद्यापति के गीत प्रसिद्ध, प्रशंसित और मनोहारी हैं। इन गीतों में शब्द और छंद पर कवि की पकड़ बेजोड़ है। इन रचनाओं में जीवन की अनुभूति है। इन गीतों को पढ़कर ऐसा लगता है कि कवि को संगीतशास्त्र का अच्छा ज्ञान था।

गीतकाव्य को व्याख्यायित करते हुए प्रो० मैनेजर पांडेय लिखते हैं, *''गीतकाव्य व्यक्ति के संवेदनशील चित्त में रूपायित भावनाओं का आवेगमय लयात्मक सहज प्रकाशन है। भावनाओं की तीव्र आत्मानुभूति गीतकाव्य का प्राण है और लयात्मक निश्छल अभिव्यक्ति उसका सार्थक रूप। गीतकाव्य में कवि के व्यक्ति चित्त और लोकचित्त का एकात्म्य होना जरूरी होता है।''* (भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य, पृ० 281) इस आलोक में यदि विद्यापति के गीतों का अनुशीलन किया जाए तो साफ-साफ दिखता है कि यहाँ कवि का जीवनानुभव आम जनता का अनुभव बनकर उतर आया है।

सपने देखल हरि, गेलाहुं पुलकें पुरि
जागल कुसुम सरासन रे।
ताहि अवसर गोरि नीन्द मांगल मोरि,
मनहि मलिन भेल वासन रे।
की सखि पओलह सुतलि जगओलह
सपनेहुं संग छड़ओलह रे।

विरह में व्याकुल नायिका नींद में सोई हुई है। स्वप्न में अपने प्रिय (कृष्ण) से मिलकर पुलकित है। कामदेव उसके अंग-अंग में जग उठा है। पर ऐसे ही अवसर पर राधा की सखि उसे जगा देती है। एक विरहिणी की इस दारुण दशा को विद्यापति ने अपनी उक्त पंक्तियों में व्यक्त किया है। नायिका अपनी सखि को उलाहना देती है कि सपने में भी मुझे तुमने अपने प्रिय से मन भर नहीं मिलने दिया। मेरा यह सुख छीनकर तुम्हें क्या मिला। ..... यह दशा केवल विद्यापति की राधा की ही नहीं, विरह की आग में झुलसती किसी भी नायिका की हो सकती है। नारी मन की इस व्यथा को राधा के द्वारा व्यक्त करते हुए महाकवि ने आवेगमय भावनाओं का जिस लयात्मकता के साथ चित्रण किया है, उसे सिर्फ महसूस किया जा सकता है।

पाठ के इस अंश में गीतिकाव्य की विकास परम्परा के मद्देनजर महाकवि विद्यापति की गीति शैली का स्पर्श मात्र हमें मिला। अगले अंश में इसे हम और विस्तार से समझ पाने का प्रयास करेंगे।

4.3 गीतिकाव्य के रूप में विद्यापति पदावली की विशेषताएँ

विद्यापति पदावली में तीन प्रकार के पद हैं

1. राधा-कृष्ण सम्बंधी पद
2. शिव, विष्णु, गंगा, जानकी, दुर्गा आदि के स्तुतिपरक पद
3. आश्रयदाता राजाओं की स्तुति भरे पद

राधा-कृष्ण संबंधी पदों में शृंगार रस की प्रधानता है। यहाँ रीतिकालीन काव्य के सारे लक्षण मिल जाएंगे, यथा रति क्रीड़ा, नखशिख वर्णन, संयोग वर्णन, विरह वर्णन आदि। दूसरे भाग में शिव, दुर्गा, विष्णु आदि के स्तुतिपरक गीतों में विद्यापति का भक्ति भाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। तीसरे प्रकार के पदों में विद्यापति ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता का गुणगान किया है।

विद्यापति के पदों की सबसे बड़ी विशेषता उसकी संगीतात्मकता ही है। सर्वविदित है कि विद्वानों से लेकर हलवाहों तक की मंडली में विद्यापति के पदों की लोकप्रियता का कारण इसकी सहज संगीतात्मकता, सरल सम्प्रेषणीयता और उसमें लोकचित्त की भावनाओं की अनुगूंज ही है। गीतिमयता इनके गीतिकाव्यों का प्राण तत्व है। कहने की आवश्यकता नहीं कि मैथिली में रचे गए इनके सारे के सारे पद गीति ही हैं। गेयधर्मिता इनमें इस तरह भरी हुई है कि रागों के सारे शास्त्रीय विधानों के साथ कई बड़े संगीतज्ञ भी ये गीत सफलतापूर्वक गाते हैं, लय, ताल, छन्द, मात्रा की कोई भी त्रुटि उन्हें इन गीतों में नहीं दिखती और दूसरी तरफ एकदम से अपटु व्यक्ति जिन्हें संगीत शास्त्र के व्याकरण

की कोई जानकारी नहीं है, वे भी बड़ी तन्मयता से गाकर आत्मसुख प्राप्त करते हैं। एक ही गीत है - **कखन हरब दुख मोर हे भोलानाथ**। यह बात अचंभे की है कि इस एक ही गीत को बगैर कहीं किसी शब्द और मात्रा परिवर्तन के लोग कभी प्रातःकालीन धुन पर गाते हैं, कभी सोहर की धुन में, कभी किसी और ही धुन में। यह इन गीतों में आत्मा की तरह बैठी हुई संगीतात्मकता ही है जो इन्हें इस कदर लयबद्ध की हुई हैं। प्रो० मैनेजर पाण्डेय कहते हैं, *''गीतकाव्य में काव्यानुभूति के साथ गीतकार की तन्मयता के अनुरूप ही पाठकीय तन्मयता संभव होती है। गीतकाव्य वैयक्तिक अनुभूति की व्यंजना है, किंतु उसमें लोक-हृदय का स्पंदन भी होता है, यही कारण है कि वैयक्तिक गीत समूहगीत बन जाते हैं।''* (भक्ति आन्दोलन .... पृ0 260)

विद्यापति के गीतों में यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इनके यहाँ सारे काव्यगीत उन तत्वों से युक्त हैं जिनके कारण गीतकार की तन्मयता के अनुरूप ही पाठकीय तन्मयता मौजूद है। पाठक, भावक और गायक - तीनों ही वर्ग के लोग इन गीतों में उतनी ही तन्मयता से खो जाते हैं, जितनी रचनाकार की रही होगी। इनकी गीति रचनाएँ, चाहे भक्तिपरक हों अथवा शृंगारपरक, शक्ति वंदना हो या गंगा स्तुति या शिव नचारी, विरह विलाप हो या मिलन सुख से युक्त - सबके सब भावक को लीन करने में सफल हैं। पावस की रात में मेघ जब अपनी सारी कलाओं से बरस रहा होता है, तब घर में अकेली बैठी कोई युवती अपने पिया की अनुपस्थिति की पीड़ा किस तरह सहती है, इसको चित्रित करते समय महाकवि ने जब **सखि हे हमर दुखक नहि ओर** गीत लिखा होगा तो कितनी तन्मयता रही होगी, यह कल्पनीय है। इस गीत में यौन पिपासा, देह लिप्सा और उद्धत कामुकता से आतुर किसी कामुक युवती की अश्लील काम भावना नहीं, विरह की आत्यन्तिक पीड़ा सहती, प्रेम रंग में रंगी एक प्रेम तपस्विनी की व्यथा व्यक्त हुई, जिसे सुनकर, पढ़कर या गाकर कोई भी व्यक्ति उस दृश्य से एकात्म्य स्थापित कर लेता है। इन गीतों में मणिकांचन संयोग की दशा यह है कि एक तरफ चित्रण ऐसे उत्कर्ष पर और दूसरी तरफ गीतिमयता यह कि पढ़ते हुए आपसे आप पाठक के भीतर से कोई संगीत बज उठे। शब्दों का उच्चारण होते ही अनुभव हो कि शायद आसपास कोई वाद्य यंत्र बज रहा हो, कोई मादक संगीत चल रहा हो, जो भीतर से हृदय को कहीं कुरेदता है :

झम्पि घन गरजन्ति सन्तत भुवन भरि बरिसन्तिया
कन्त पाहुन काम दारुण सघने खर शर हन्तिया।
कुलिश कत शत पात मुदित मयूर नाचत मातिया
मत्त दादुर डाके डाहुकि फाटि जायत छातिया।।

विद्यापति के इन गीतों को आदर्श मानने वाले भावकों को प्रो० मैनेजर पाण्डेय की यह धारणा सही लगेगी कि *''गीत काव्य में नाद-तत्व या संगीत संवदेना से उद्भूत लयात्मक बोध अनिवार्य होता है। गीत और संगीत का संबंध आत्मिक है, आंतरिक है। गीत काव्य में भावों की गति लयात्मक होती है।... संगीत गीतकाव्य का सहज अंग है। गीतकाव्य में कहीं संगीत से काव्यत्व दब जाता है और कहीं काव्यत्व से संगीत अनुशासित होता है''*। (भक्ति आंदोलन...., पृ0 261) महाकवि विद्यापति के इन गीतों को देखते हुए स्पष्ट होता है कि यहाँ भावों की लयात्मक गति में काव्य और संगीत का अनूठा सामंजस्य है। प्रो० पाण्डेय कहते हैं, *''विद्यापति के पदों में सौंदर्य चेतना का आलोक भावानुभूति की तीव्रता, घनत्व एवं व्यापकता और लोकगीत तथा संगीत की आंतरिक सुसंगति है। कुछ आलोचकों का मत है कि विद्यापति के गीत लोकगीत के अधिक निकट हैं और उनमें संगीत की शास्त्रीयता का अभाव है। विद्यापति के गीतों में संगीत के तत्वों का अभाव नहीं है, क्योंकि लोचन कवि ने रागतरंगिनी में विद्यापति के गीतों की संगीतात्मकता का विशद विवेचन किया है। विद्यापति के गीतों का प्रभाव सूरदास के लीला पदों के रूप पर दिखाई पड़ता है..... विद्यापति और सूरदास दोनों ही भक्ति आन्दोलन के कवि हैं, दोनों के काव्य में लोकगीत की मौखिक परंपरा का सर्जनात्मक रूप व्यक्त हुआ है। ये दोनों ही हिंदी जगत के दो जनपदों की भाषा के ग्रामगीतों के कलात्मक रूप के निर्माता और उन गीतों में जन संस्कृति के रचनाकार हैं ''*। (भक्ति आंदोलन ...., पृ0 264)
विद्यापति के गीत एक ओर लोकगीतों के करीब हैं तो दूसरी ओर इनमें शास्त्रीयता भी है। विभिन्न स्थानों से विद्यापति की जो पदावलियाँ हासिल हुई हैं, उसमें संकलित पदों के शीर्ष पर रागों का नाम उल्लिखित है कि कौन-सा गीत किस राग में गाया जाएगा। मालव राग, धनछरी, सामरी, अहिरानी, केदार, कानड़ा, कोलाव, सारंगी, गुंजरी, बसन्त, विभास, नटराग, ललित, वरली आदि रागों का उल्लेख पदों के शीर्ष पर है।

महाकवि विद्यापति के सारे गीतों का समुचित संकलन अभी तक तो हो नहीं पाया है, परन्तु यह उनके पदों की गीतात्मक विशेषता ही है कि असंख्य गीत लोक कंठ में बस गए हैं और यह कवि का लोक संबंध तथा लोक संस्कृति से गहरी सम्बद्धता ही है कि इन गीतों के विभिन्न सामाजिक रीति-रिवाज

मौजूद हैं जिस कारण वे गीत जनपद की ललनाओं द्वारा उपनयन, विवाह, मुण्डन, पूजा-पाठ, कीर्तन-भजन, सावन, जन्म-मरण आदि अवसरों पर गाए जाते हैं और बिल्कुल उन अवसरों के लिए सटीक बैठते हैं।

महाकवि विद्यापति के कई गीत यदि लोक कंठ में बस गए हैं तो उसका कारण यही है कि यहाँ शब्द संगीत, नाद संगीत और भाव संगीत - तीनों एकमेक होकर ऐसी त्रिवेणी बहा रहा है, मानो गीतिकाव्य का आनन्दातिरेक यहीं से शुरू होकर यहीं खत्म हुआ चाहता है। जब **''के पतियालए जायत रे''**, **''सखि हे, हमर दुखक नहि ओर''**, **''सखि की पूछसि अनुभव मोहि''**, **''प्रथम सूमागम भुषल अनंग''**, **''उगना रे मोर कतए गेलाह''**, **''जय-जय भैरवि असुर भयाउनि''**, **''बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे''**.... जैसे गीतों के पद पढ़े जाते हैं तो इनमें शब्द संगीत, नाद संगीत और भाव संगीत की ऐसी ताकत भरी हुई है कि बिना प्रयास के आपसे आप नितान्त अपटु और लयहीन मनुष्य के मुंह से भी धुन और लय फूट पड़ता है। इनके गीतों को गाने की जरूरत नहीं होती, यहाँ संगीत तत्व इतना बलवान है कि वह स्वतः फूट पड़ता है।

विद्यापति के गीत लोकगीत के रूप में प्रचलित हैं। जनपद में लोकगीतों की तरह व्याप्त इनके गीतों का कारण ढूढ़ने में पाठकों को ज्यादा परेशानी नहीं होनी चाहिए। यहाँ मनुष्य के राग-विराग, संयोग-वियोग, दुख-सुख, हर्ष-विषाद, मिलन-विरह, मान-समर्पण, लास-उल्लास, लाज-धाक, क्रोध-स्नेह - रंग और पानी की तरह घुला-मिला है। यह विभाजन रेखा खींचना कठिन है कि जनपद की कौन-सी कहावत और कौन सा मुहावरा इनके गीतों में आकर साहित्य बन गया है और कौन सी पंक्ति लोककंठ में जाकर कहावत बन गई है। किसी के आगमन के लिए काक-शकुन की प्राचीन परम्परा मिथिला में है। महाकवि विद्यापति जब विरह व्याकुल नायिका द्वारा ''काग'' की खुशामद करने वाले गीत में इस लोक सत्य को व्यक्त करते हैं तो वह एक परिष्कृत रूप के साथ सामने आता है। आज भी इस पद की पंक्ति किसी प्रतीक्षा करती नायिका के मुंह से निकल जाती है :

मोरा रे अंगनवां चनन केरि गछिया
ताहि चढ़ि कुररय काग रे
सोने चोंच बांधि देब तोयं वायस
जओं पिया आवत आज रे।

आम जनजीवन की सामान्य सच्चाई है कि किसी भी तरुणी का प्रीतम जब उससे अलग रहता है तो सतत वह उसके संबंध में ही सोचती रहती है। कामदग्धा नायिका की जो आकांक्षाएं जाग्रतावस्था में पूरी नहीं होती है और हरदम जिसके लिए व्याकुल रहती हैं, स्वप्न में उनकी पूर्ति शुरू हो जाती है। लेकिन इस आकांक्षा पूर्ति की लालसा इतनी उत्कट रहती है कि उस हाल में वह सोई नहीं रह पाती। अपनी आंगिक और वाचिक चेष्टाओं के कारण जग जाती है। फलस्वरूप नींद में पूरी होने वाली आकांक्षा भी अपूर्ण रह जाती है :

सुतलि छलहुं हम घरबारे गरबा मोतिहार
जखनि भिनसरबारे पिया आएल हमार

.....

केहनि अभागलि बैरिमिरे भांगली मोहि निन्द
भल कए नहिं देखि पाओल रे गुनमय गोविन्द

स्वप्न सुख और स्वप्न का सुख भंग विद्यापति के यहाँ कई रूपों में कई कई गीतों में दिखता है। लोक जीवन की अनुभूतियों के कई कई चित्र इनके यहाँ काफी स्वच्छ, निष्कपट और सरल रूप में अपनी पूरी सामर्थ्य के साथ मौजूद हैं।

यदि कायदे से समीक्षा की जाए तो यह साफ-साफ दिखेगा कि साहित्य में रस की जिस सरिता की कल्पना भावकों ने की है, महाकवि विद्यापति की पदावली ही इस सरिता का उदाहरण है जहाँ संगीत की स्वर लहरी अपनी पूरी नाद शक्ति के साथ शब्दों , अर्थों, भावों, विचारों और लोक यथार्थों के सारे चित्रों को बहाए जा रही है, एकदम शान्त और समुज्ज्वल रूप में .....। कोई अशान्ति नहीं, कोई अभद्रता नहीं, कोई उच्शृंखलता नहीं। इस साहित्य धारा में यमुना की शान्ति और धीरता, गंगा की निश्छलता और सरस्वती की पवित्रता तथा अदृश्यता हर तरह से मौजूद है। इनकी पदावली को पढ़कर उठने वाले हर भावक को विद्यापति के शब्दों में कहना पड़ेगा - **''बड़ सुखसार पाओल तुअ तीरे''** - जैसे स्वयं महाकवि ने इहलोक से विदा लेते समय गंगा की स्तुति में कहा था।

विद्यापति पदावली में राधा-कृष्ण के बहाने से नायक-नायिका के विरह मिलन का सूक्ष्म और मार्मिक चित्रण हुआ है। संयोग पक्ष का चित्रण करने में कवि की भावाभिव्यक्ति सहज रूप में व्यक्त हुई है। कवि ने नायक-नायिका के आंतरिक भावों को सहज अभिव्यक्ति दी है। प्रेम वस्तुतः विरह की आंग में तपता है। विद्यापति ने भी विरह के माध्यम से गहरी प्रेमानुभूति व्यक्त की है। आंतरिक भावों के चित्रण में कवि बेजोड़ है।

4.4 विद्यापति पदावली में भक्ति और शृंगार का द्वन्द्व

विद्यापति के भक्ति प्रधान गीत और शृंगार प्रधान गीतों की पड़ताल थोड़ी सावधानी से करने की जरूरत है। कारण, इनके यहाँ और भक्ति कालीन कवियों की तरह न तो एकेश्वरवाद है और न ही अन्य शृंगारिक कवियों की तरह लोलुप भोगवाद। एक डूबे हुए काव्य रसिक के इस समर्पण में ऐसी जीवनानुभूति है कि भक्ति, शृंगार पर और ज्यादातर जगहों पर शृंगार, भक्ति पर हावी नजर आता है। इनके यहाँ भक्ति और शृंगार की धाराएँ कई-कई दिशाओं में फूटकर इनके जीवनानुभव को फैलाती हैं और कवि के वैराट्य को दर्शाती हैं।

भक्ति और शृंगार के जो मानदंड आज के प्रवक्ताओं की राय में व्याप्त हैं, उस आधार पर महाकवि विद्यापति के काव्य संसार को बाँटें, तो राधा कृष्ण विषयक ज्यादातर गीत शृंगारिक हैं और जो भक्ति गीत हैं, उनमें प्रमुख हैं - शिव स्तुति, गंगा स्तुति, काली वंदना, कृष्ण प्रार्थना आदि। उल्लेख्य है कि स्त्री-पुरुष प्रेम विषयक जो भी शृंगारिक पद विद्यापति ने लिखे वे अपने जीवन के अंतिम तीस-बत्तीस वर्षों से पूर्व ही। अर्थात शिव सिंह जैसे प्रिय मित्र की मृत्यु के बाद इन्होंने शृंगारिक रचनाएँ नहीं की। शृंगार और भक्ति को परस्पर विरोधी मानने वाली धारणा से मुक्त होने के लिए डॉ० शिव प्रसाद सिंह का मत गौरतलब है, *''विद्यापति के काव्य के विषय में प्रायः ये शंकाएँ की जाती हैं कि यह रहस्यवादी भक्ति काव्य है, या केवल शृंगार प्रधान प्रेम काव्य। भक्ति और शृंगार के विषय में भी हमारे मन में कुछ धारणाएँ बद्धमूल हो गई हैं। बहुत से लोग विद्यापति आदि के नख-शिख वर्णनों को देखकर इतने घबरा जाते हैं कि उन्हें इन कवियों की भक्ति-भावना पर ही अविश्वास होने लगता है। प्रत्येक महाकवि अपनी परम्परा का परिणाम होता है। यह सच है कि जीवंत कवि पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नई भावधारा की सृष्टि करता है और पुराने प्रथा-प्रथिक वर्णनों की शृंखला का विच्छेद करके नए उपमान-मुहावरे प्रतीकों का निर्माण करता है किन्तु कोई अपनी परम्परा से एकदम विच्छिन्न कभी हो ही नहीं सकता। विद्यापति के काव्य को समझने के लिए तत्कालीन काव्य की मर्यादाओं को, नियमावलियों को तथा कविजनोचित उस परम्परा को समझना होगा जो उन्हें विरासत के रूप में मिली थी।''* (विद्यापति, पृ० 96)

भक्ति और शृंगार - दोनों प्रवृत्तियाँ मध्यकाल के साहित्य में पाई जाती हैं। यह दीगर बात है कि भक्तिकाल का समय निर्धारण साहित्येतिहास में जब से होता है, उसके चार-पाँच वर्ष बाद विद्यापति ने शृंगारिक गीतों की रचना छोड़ दी। कहा जा सकता है कि इनकी शृंगारिक रचनाओं का प्रायः सर्वांश भक्तिकाल के पूर्व ही लिखा गया। लेकिन भक्तिकाल की जो भी रचनाएँ हैं उनका संबंध किसी न किसी तरह अपभ्रंश साहित्य की भक्तिपरक रचनाओं से कमोबेश होगा। डॉ० शिव प्रसाद सिंह की राय में अपभ्रंश साहित्य की भक्तिपरक रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ राधाकृष्ण संबंधी पदों में भक्ति और शृंगार का समन्वय, शृंगार का अत्यन्त मुखर रूप, संगीत-प्रेम-भक्ति का समन्वय आदि हैं। (विद्यापति, पृ० 96)

हो न हो विद्यापति के पदों में संगीतमयता, प्रेम और भक्ति के इतने उत्कृष्ट रूप का कारण उस विरासत का प्रभाव भी हो। पर आचार्य शुक्ल की राय में भक्तिपरक रचनाओं में शृंगारिक पुट होना कुछ ठीक सा नहीं हुआ। सूर के पदों के हवाले से आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस बात की शिकायत की है कि भक्ति रचना में शृंगारमय आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना का समाज पर कल्याणकारी असर नहीं हुआ। विषय वासना में रत रहने वाले स्थूल दृष्टि के लोगों पर इसका प्रभाव ठीक नहीं पड़ा। आगे के साहित्य में उन्मादकारिणी उक्तियों भरी शृंगारिक रचनाओं को उन्होंने इसके परिणाम के रूप मे देखा है।

विद्यापति के यहाँ भक्ति और शृंगार का यह रूप कुछ भिन्न है। यहाँ लोग चाहें तो आज की परिपाटी के अनुसार शृंगार और भक्ति की रचनाओं को अलग-अलग करके देख सकते हैं। ऐसे सच यह भी है कि विद्यापति के मैथिली में लिखे राधा-कृष्ण प्रेम विषयक गीतों को कई कृष्ण भक्त भक्तिगीत के रूप मे गाते हैं।

गीत गोविन्दम् में एक श्लोक है जिसमें जयदेव को कहना पड़ा कि यदि आपका मन सरस हो, हरि-स्मरण करना चाहें और विलास के कुतूहल में रमना चाहें तो आप जयदेव की मधुर कोमलकान्त पदावली सुनें। भागवत में तो श्रद्धा और रति को भक्ति की सीढ़ी माना गया है। तंत्र साधना वाले साहित्य युग में ''पंचमकार सेवन'' भी गौरतलब है।

विद्यापति के पदों के संदर्भ में प्रो० मैनेजर पाण्डेय के कथन के सहारे ही बातें खुलती है कि लौकिक प्रेम ही ईश्वरोन्मुख होकर भक्ति में परिणत हो जाता है। लौकिक प्रेम भी जोड़ने का काम करता है और ईश्वरीय प्रेम भी। एकात्म्य की जो स्थिति भक्ति में दिखाई देती है और विद्यापति जिसे आत्मा परमात्मा के मिलन रूप में कहते हैं - **''तोहे जनमि पुनि तोहे समाओब सागर लहरि समाना''।** यह स्थिति लौकिक प्रेम मे कैसे फलित होती है यह देखने के लिए कृष्ण के विरह में नायिका द्वारा गाया गया वह गीत है - **''अनुखन माधव सुमरइत राधा भेल मधाई''।** अर्थात सुध-बुध खोकर प्रेम दिवानी होने वाली राधा की जो व्याकुलता यहाँ है, भक्ति में यही व्याकुलता और विह्वलता भक्तों की होती है।

संगीत के अलावा भक्ति और शृंगार की यह तात्विकता जहाँ एकमेक होती है, वहाँ विद्यापति के कुछ भक्तिपरक पदों में शृंगार और भक्ति का संघर्ष भी परिलक्षित होता है। जो विद्यापति शृंगारिक गीतों में समर्पण और सौन्दर्य की हद तक लीन हैं। रमण, विलास, विरह, मिलन के इतने पक्षों को इतनी तल्लीनता से चित्रित करते हैं और **''यौवन बिनु तन, तन बिनु यौवन, की यौवन पिय दूरे''** कहते हुए पिया के बिना तन और यौवन की सार्थकता ही नहीं समझते, वही विद्यापति अपने भक्तिपरक गीतों में विनीत हो जाते हैं और पूर्व में किए गए रमण और आराम को निरर्थक बता देते हैं : **'आध जनम हम निन्दे गमाओल, जरा शिशु कत दिन गेला; निधुवन रमणी रसरंगे मातल, तोहे भजब कोन बेला''।** ये वही विद्यापति हैं, इतने मनोग्राही शृंगारिक गीतों की रचना करने के बाद अंत समय में **''तातल सैकत बारि विन्दु सम सुत मित रमणि समाजे''** कह देते हैं। जिन्होंने शृंगारिक गीतों में नायिका के मनोवेग को जीवन दिया है, उसे प्राणवान किया है, वे विद्यापति उस ''रमणि'' को तप्त बालू पर पानी की बूंद के समान कहकर भगवान के शरणागत होते हैं। **''जावत जनम हम तुअ न सेवल पद, युवति मनि मअ मेलि, अमृत तेजि किए हलाहल पीउल, सम्पदे विपदहि भेलि''** कहकर महाकवि स्वयं शृंगार और भक्ति के सारे द्वैध को खत्म कर देते हैं, ऐसा मानना शायद पूरी तरह ठीक न हो। पूरा जीवन युवतियों के साथ बिताया, अमृत (ईष्ट भक्ति) छोड़कर विषपान किया - यह भावना कवि की शालीनता ही दिखाती है। दो कालखंडों और दो मनःस्थितियों में एक ही रचनाकार द्वारा रचनाधर्म का यह फर्क कवि का पश्चाताप नहीं, उसकी तल्लीनता प्रदर्शित करता है कि वह जहाँ कहीं भी है, मुकम्मल है। हम शृंगारिक कवि विद्यापति और भक्त कवि विद्यापति को तौलने और समझने का प्रयास तो अवश्य ही करें, इन्हें लड़ाने का प्रयास नहीं कर सकते।

4.5 विद्यापति पदावली की भाषा

विद्यापति पदावली की भाषा मैथिली है। अपनी भाषा और अपनी रचनाओं के बारे में विद्यापति इतने आश्वस्त थे, उन्हें इतना आत्म-विश्वास था कि अपनी प्रारंभिक कृति **''कीर्तिलता''** में उन्होंने घोषणा कर दी - **''बालचन्द विज्जावइ भासा। दुहु नहि लग्गइ दुज्जन हासा''** अर्थात बालचन्द्रमा और विद्यापति की भाषा - दोनों ही दुर्जनों के उपहास से परे हैं। इसी तरह **''महुअर बुज्झइ कुसुम रस, कव्व कलाउ छइल्ल''** - अर्थात मधुकर ही कुसुम रस का स्वाद जान सकता है, जैसे काव्य रसिक ही काव्य कला का मर्म समझ सकता है। जनोन्मुख होने के सम्बंध में तो उन्होंने साफ-साफ लिखा -

> **सक्कअ वाणी बुहअण भावइ। पाउअ रस को मम्म न पावइ**
> **देसिल वअना सब जन मिट्ठा। तें तैसन जम्पओ अवहट्टा**

अर्थात संस्कृत भाषा बुद्धिमानों को ही भाती है। प्राकृत में रस का मर्म नहीं मिलता। देशी भाषा सबको मीठी लगती है, इसीलिए इस प्रकार अवहट्ट में मैं काव्य लिखता हूँ।

जाहिर है कि लोकरुचि और लोकहित के पक्ष में सोचने वाले इतने बड़े चिन्तक जब पदावली रचने में लगे होंगे तो उन्होंने भाषा के बारे में एक बार फिर से सोचा होगा और उसकी भाषा तत्कालीन समाज की लोकभाषा मैथिली अपनाई होगी और अपने पदों में समकालीन समाज की चित्त वृत्ति का चित्र खींचा होगा।

मैथिली विद्यापति की मातृभाषा थी। उस काल के साहित्य या उससे पूर्व भी ज्योतिरीश्वर ठाकुर रचित **''वर्णरत्नाकर''** के अनुशीलन से पता चलता है कि मैथिली उस समय की पर्याप्त समुन्नत भाषा थी। **कीर्तिलता** और **कीर्तिपताका** के बाद महाकवि ने मैथिली में ही लिखा और ये रचनाएं हैं इनकी **पदावली**। विद्यापति की भाषा भाव-बिंबात्मकता और अलंकार विधान की दृष्टि से भी उत्कृष्ट है। विरह मिलन के पदों में और राधा-कृष्ण के सौंदर्य वर्णन में कवि पूरा बिंब हमारे सामने परोस देता है :

गगन अब घन मेह दारून, सघन दामिनी झलकाई।
कुलिश पातन सबद झनझन, पवन खरतर बलगई।।

तेज वर्षा हो रही है, बिजली चमक रही है। कड़क कर वज्रपात हो रहा है और तेज हवा चल रही है। रात्रि की भीषणता रोमांचित करने वाली है। इस पूरे परिवेश से प्रिय मिलन की उत्कंठा और भी तीव्र हो जाती है। कवि ने ऐसे बिंबों का ही प्रयोग नहीं किया है बल्कि अलंकारों का भी सार्थक प्रयोग किया है। उन्होंने परंपरागत उपमाओं का प्रयोग करने के साथ-साथ नये उपमानों की भी सर्जना की है।

विद्यापति के गीतों की संप्रेषण शक्ति का असर यह है कि ये गीत श्रोताओं को अपने साथ बहा ले जाते हैं। श्रोता अपने में नहीं रहते, इन गीतों के अर्थात् उन चित्रणों और दृश्यों के गुलाम हो जाते हैं। वे शब्द चित्र इतने जीवन्त होते हैं कि श्रोता उसकी काल्पनिकता से अनभिज्ञ हो जाते हैं और चित्र उनके सामने प्राणवान हो उठते हैं। बोल-चाल की भाषा के शब्द और जनपद में व्याप्त लोकोक्तियों और मुहावरों को भुनाने की ऐसी अच्छी तरकीब अन्यत्र कम देखने को मिलेगी। कहा जा सकता है कि अपने काव्य उपादानों का महाकवि ने हर तरह से संभव हो सकने वाला दोहन किया है। यह दोहन किसी श्रेष्ठ कला-कौशल और उत्तम प्रतिभा वाले रचनाकार से ही संभव है। लोक जीवन में व्याप्त मुहावरों का इनके गीतों में न केवल उपयोग हुआ है, बल्कि उसकी पृष्ठभूमि इनके यहाँ बाकायदा गीत का विषय भी बना है। **''मोरा रे अंगनवां चनन केर गछिया''**, **''पिआ मोरा बालक हम तरुणी गे''** जैसे गीतों का लोककंठ में बस जाना इसी का परिणाम है।

पदावली में संस्कृत, अपभ्रंश, ब्रजभाषा, नेपाली, बंग प्रान्तीय, ओड़िया, असमिया आदि के शब्दों और अनेक कारक रूपों के साथ-साथ मगही, भोजपुरी जैसी उपभाषाओं के बड़े साफ और सहज प्रयोग हुए हैं। **''भू परिक्रमा''** पुस्तक के अवलोकन से विद्यापति के भौगोलिक ज्ञान और परिभ्रमण का अन्दाज लगता है। जाहिर है कि कई स्थानों के भ्रमण के क्रम में इनकी ईमानदार लेखनी ने हर जगह के भ्रमण और हर भाषा के अनुशीलन का प्रभाव भूल जाने का प्रयास नहीं किया। हाल-हाल तक बंगाल के विद्वानों में विद्यापति को बंगला के रचनाकार घोषित करने की अफरा-तफरी मची हुई थी, शायद इसका कारण यही रहा हो।

इनकी भाषा की विशेषता यह रही कि समीपवर्ती कई अन्य भाषाओं के रचनाकार इनसे प्रभावित हुए बगैर नहीं रहे। बंगला, ओड़िया और असमिया के तत्कालीन साहित्य में या बहुभाषाविद प्रारंभिक श्रेष्ठ रचनाकारों के यहाँ इन प्रभावों की तलाश की जा सकती है। मैथिली से प्रभावित ब्रजबुलि भाषा में सैकड़ों वैष्णव पद एवं कविताओं की रचना बंग प्रदेश में हुई। इस संबंध में डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी और डॉ० दिनेश चन्द्र सेन आदि का मत है कि कई बंगाली रचनाकार मैथिली पर मुग्ध होकर उसमें रचना करने लगे। शताधिक बंगाली कवियों ने इस भाषा में काव्य रचना की। अनुकरण का प्रवाह तो ऐसा हुआ कि कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर्यन्त इसमें प्रवाहित हुए पर इस पर कोई अनुसंधान नहीं हुआ कि यह भाषा कहाँ की है।

4.6 परवर्ती काव्यधारा में विद्यापति का प्रभाव

किसी भी शक्तिशाली घटक के सान्निध्य में रहने पर उसका प्रभाव पड़ जाना सामान्य सी बात है। लगातार चुम्बकों के बीच रखे रहने पर लोहा में चुम्बकीय गुण आ जाता है। महाकवि विद्यापति की काव्य परम्परा विषय और शिल्प - दोनों स्तरों पर इतनी सशक्त थी कि न केवल मैथिली बल्कि पूर्वोत्तर भारत की समस्त रचना-प्रक्रिया उनसे प्रभावित हो उठी। रागतरंगिणी में संकलित पदों का विधिवत अनुशीलन करने पर विद्यापति के प्रभाव का प्रमाण मिलता है। राधा-कृष्ण विषयक काव्य सृजन की परम्परा विद्यापति से पूर्व भी थी। पर विद्यापति ने राधा कृष्ण विषयक प्रेम को अपने गीतों के माध्यम से जो विस्तार दिया, उसका सहज प्रभाव उनके समकालीन कई रचनाकारों पर पड़ा। भाव, शिल्प, छन्द - सब तरह से समकालीन रचनाप्रक्रिया विद्यापति से प्रभावित हुई। मिलन-विरह, नख-शिख वर्णन, मान-अभिसार, भक्ति-शृंगार आदि विषयों पर नाना छन्दों में गीत रचे गए। मिलन की उत्कंठा, विरह में

व्यथा और व्याकुलता, मिलन के बावजूद अतृप्ति आदि-आदि उपादान उस समय के कई कवियों के यहाँ पाए गए। रंगतरंगिणी में संकलित रचनाओं को देखने पर यह तय होता है।

परवर्ती काव्यधारा में मैथिली के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि काफी अन्तराल तक विद्यापति की परम्परा का ही निर्वाह हुआ। गोविन्द दास, उमापति, रत्नपाणि, हर्षनाथ, हरिदास, महाराजा महेश ठाकुर, लोचन प्रभृति कवियों ने तो महाकवि की परम्परा को ही आगे बढ़ाया। कुछ संकलन कर्त्ताओं द्वारा तो इनकी रचनाओं के अंत में विद्यापति का नाम जोड़ दिया गया और इस कारण अनुसंधान करने वाले लोगों के लिए भी एक मुसीबत खड़ी हो गई। गोविन्द दास ने तो विद्यापति को खुलेआम अपना प्रेरणा-स्रोत ही मान लिया - **''कविपति विद्यापति मतिमाने, जाक गीत जगचीत चोराओरण गोविन्द गौरि सरस रस जाने।''** गरज कि केवल भाव ही नहीं, छन्द ही नहीं, विषय ही नहीं, भाषा रूप और उसके विविध व्याकरणिक पक्षों पर और वर्तनी तक पर इनका प्रभाव रहा।

कृष्ण भक्त कवियों खासकर सूर और मीरां के यहाँ राधा कृष्ण विषयक पदों में शृंगार और भक्ति का अपूर्व समागम है। सौन्दर्यपरक दोहों में कृष्ण भक्त कवियों के यहाँ विद्यापति का स्पष्ट प्रभाव ढूंढ़ने में कोई संशय नहीं होता। प्रो० मैनेजर पाण्डेय ने भी यह बात कही है कि ''विद्यापति के गीतों का प्रभाव सूरदास के लीला पदों पर दिखाई पड़ता है। (भक्ति आंदोलन..., पृ० 264)। प्रिय मिलन के समय की आतुरता, विह्वलता, बेचैनी, अपनी सहज अभिव्यक्तियों पर अनियंत्रण और अनायास चेष्टाओं का जो प्रखर रूप सूर की नायिका में है, वह विद्यापति की परम्परा का ही है। हिन्दी के अन्य परवर्ती कवियों पर भी इनके गीतों का प्रभाव खोजा जा सकता है। और यह केवल मैथिली तथा हिन्दी की बात नहीं है, असल में महाकवि विद्यापति के गीतों की प्रभाव-शक्ति ही इतनी प्रबल रही कि प्रान्तेतर भाषाओं तक पर प्रभाव हुए बगैर नहीं रहा। बंगाल, असम, ओड़ीसा तथा नेपाल की साहित्यिक परम्पराओं पर भी विद्यापति के गीतों का प्रभाव पड़ा। बंगाल में तथा असम में विद्यापति की मान्यता वैष्णव भक्त के रूप में हुई। विद्यापति के जिन गीतों को मिथिला में शृंगारिक गीत की सत्ता प्राप्त थी, बंगाल में वही कीर्तन के रूप में अभिगृहीत हुए। चैतन्य देव समेत कई वैष्णव भक्तों ने इसका अनुसरण किया। कई बंगला कवियों ने इस भाषा तथा भाव का अनुकरण करते हुए काव्य सृजन किए जो ''ब्रजबुलि साहित्य'' के नाम से ख्यात हुआ।

वैष्णव धर्म का प्रचार जब पूर्वांचल में पूरी तरह हो गया तो उस क्षेत्र में विद्यापति के गीतों का गान होने लगा। असम का ''वरगीत'' तथा ''अंकिया नाट'' विद्यापति के प्रभाव से पल्लवित पुष्पित हुआ। इस साहित्य में रचे गए गीतों के भाव, विषय और शैली, विद्यापति के प्रभाव से परिपूर्ण हैं।

ब्रजबुलि साहित्य के माध्यम से विद्यापति के गीतों का प्रभाव उड़ीसा के साहित्य पर भी पड़ा। सोलहवीं शताब्दी के कुछ मैथिली कवियों की प्रसिद्धि बताई जाती है जो उड़ीसा के शासक नरसिंह देव के दरबार में थे और जिन पर विद्यापति की रचना धर्मिता का भरपूर असर है। और नेपाल में तो सहज ही, विद्यापति का असर दिखेगा। सिंहभूपति, जगज्ज्योतिर्मल्ल और भूपतीन्द्र जैसे कई रचनाकार सत्रहवीं शताब्दी में ऐसे हुए, जो नेपाल में रहकर अपने आश्रयदाता के शासन काल में विद्यापति की परम्परा से प्रभावित होकर रचना करते रहे। आज भी विद्यापति पदावली का जो कुछ संग्रह प्राप्त हुआ, उसका एक बड़ा भाग नेपाल से ही प्राप्त हुआ है।

हिंदी कविता पर विद्यापति का प्रभाव अन्य किसी भी भाषा से ज्यादा पड़ा। विद्यापति की तमाम परवर्ती काव्यधारा इनके शब्द चयन और वाक्य संरचना से तो प्रभावित रही ही, ध्वनि, रस, अलंकार, विषय आदि तक में इनका प्रभाव दीखता है। भक्ति काल की कृष्ण भक्ति शाखा और रीतिकाल की शृंगारपरक कविताएं इनसे प्रभावित प्रतीत होती हैं। पंडित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने विद्यापति को आगे आने वाले हिंदी साहित्य को यहाँ से वहाँ तक प्रभावित कर देने वाला कवि माना है। दिनकर ने इनकी कविता को मेरी पसंद की कविताएं कहा है और निराला ने भी इनके प्रति अपना आकर्षण दिखाया है। निराला का यह गीत इस बात का स्पष्ट प्रमाण है :

नव गति, नव लय ताल छंद नव
नवल कंठ, नव जलद मंद्र रव
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव स्वर नव पर दे

इस आलोक में विद्यापति के गीत को देखिए

नव वृंदावन नव नव तरूगन

नव नव विकसित फूल
नव वसंत नवल मलयानिल
मातल नव अलिकूल

ये दोनों गीत एक साथ अपने छंद, अलंकार, शब्दों की पुनरावृत्ति, ध्वनियों के उतार-चढ़ाव, भाव की एकरसता के साथ झंकृत हो उठे हैं।

4.7 सारांश

विद्वानों की परिपाटी तो रचनाकारों को परिभाषित, सीमित करने और उन पर निर्णयात्मक वाक्य कहने की है। पर विद्यापति के सम्बन्ध में विद्वानों के सामने सतत समस्या आती रही है। इनका फलक इतना विस्तृत है कि ये विद्वानों की पहचान शक्ति की सीमा में समा नहीं पाते हैं। उनके पास जितनी भी पारिभाषिक शब्दावलियाँ हैं, वे विद्यापति के लिए अपूर्ण हो जाती हैं। वीर गाथा कवि कहा जाए तो प्रेम छूट जाता है, भक्त कवि कहा जाए तो शृंगार छूट जाता है। यह भी कह दिया जाए तो लोक चेतना को उजागर करने वाला इनका रूप अनदेखा रह जाता है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि अपनी भाषा की सादगी, प्रयोग में ग्राम्य और भदेसपन रहने के बावजूद महाकवि विद्यापति का जो विराट रूप हमारे सामने है, वह संपूर्ण भारतीय भाषाओं में अनोखा और अद्वितीय है। इनके यहाँ काव्य की जिस किसी कसौटी से भी समीक्षा शुरू करें, काव्य के जिस पहलू को ही उठाएँ, वहाँ लवण की संतृप्ति जैसी पूर्णता दिखती है, एकदम से उचित, न थोड़ा ज्यादा न थोड़ा कम। इनकी सौन्दर्य प्रियता की चर्चा करते हुए डॉ० शिव प्रसाद सिंह कहते हैं कि **सौन्दर्य उनका दर्शन है, सौन्दर्य उनकी जीवन-दृष्टि। इस सौन्दर्य को उन्होंने नाना रूपों में देखा था, इसे कुशल मणिकार की तरह उन्होंने चुना, सजाया, सँवारा और आलोकित किया था। सौन्दर्य मन को कितना भाव विह्वल और एकोन्मुख कर देता है, इसे विद्यापति जानते थे। (विद्यापति, पृ० 154)।**

सौन्दर्य से संबद्ध विद्यापति की रचनाओं के अनुशीलन से यही बात सामने आती है कि ये सौन्दर्य के भोक्ता नहीं स्रष्टा थे, सौन्दर्य अनकी आंखों , प्रवृत्तियों और मन में था। इन्हें मिलन की हर स्थिति प्रिय थी, विरह की हर स्थिति व्याकुल करने लायक थी और मिलन में बाधा उत्पन्न करने वाले हरेक तत्व अप्रिय और त्याज्य थे। भले ही वह प्रेमी प्रेमिका के मिलन में उपस्थित बाधा लोकलाज अथवा गुरुजनों की धाक हो या भक्त-भगवान के मिलन में उपस्थित बाधा विषय वासना और आलस्य ही क्यों न हो।

संगीत और प्रेम - मानव जीवन को आत्मिक सुख के चरम पर पहुँचाता है। मैथिली में रचे गए इनके सारे गीतों को ध्यान से देखें, चाहे वह शृंगारिक हों या आध्यात्मिक - तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी। और इन गीतों में व्याप्त ये दोनों तत्व उसी तल्लीनता से भावकों तक पहुँच जाएँ, इंसके लिए इन्होंने ग्राम्य पद, लोकोक्ति, बोल-चाल की भाषा, जनपद के लोकाचार - सबका सहारा लिया और सफल हुए। कुल मिलाकर देखें तो **विद्यापति पदावली** सम्पूर्ण रूप से एक जीवन जीने का अवसर देती है। भाषा प्रयोग तो मानो इनके यहाँ प्राणवान हो उठता है, उक्ति वैचित्र्य लगता है इनके यहाँ बोल उठते हैं।

4.8 अभ्यास/प्रश्न

1. गीतिकाव्य के रूप में विद्यापति पदावली की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
2. विद्यापति पदावली में भक्ति और शृंगार का द्वंद्व किस रूप में प्रकट हुआ है?
3. विद्यापति पदावली की भाषा पर टिप्पणी कीजिए।

इस खंड के लिए उपयोगी पुस्तकें

1. पृथ्वीराज रासो भाषा और साहित्य, नामवर सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
2. संक्षिप्त पृथ्वी राज रासो, हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं नामवर सिंह, साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड, इलाहाबाद
3. विद्यापति अनुशीलन एवं मूल्यांकन, वीरेन्द्र श्रीवास्तव, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना
4. विद्यापति, शिव प्रसाद सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989
5. विद्यापति युग और साहित्य, इन्द्रकांत झा, इन्द्रालय प्रकाशन, पटना